तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक ३ : जुलाई १९८२

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON

Telephone: 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक १

जुलाई १९८२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

महावीर ने कहा था ६६

जैन अलंकार साहित्य ७१

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ८०

डा० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा का एक
महत्वपूर्ण ग्रन्थ—'जैन प्रतिमाएं' ९१

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ९४

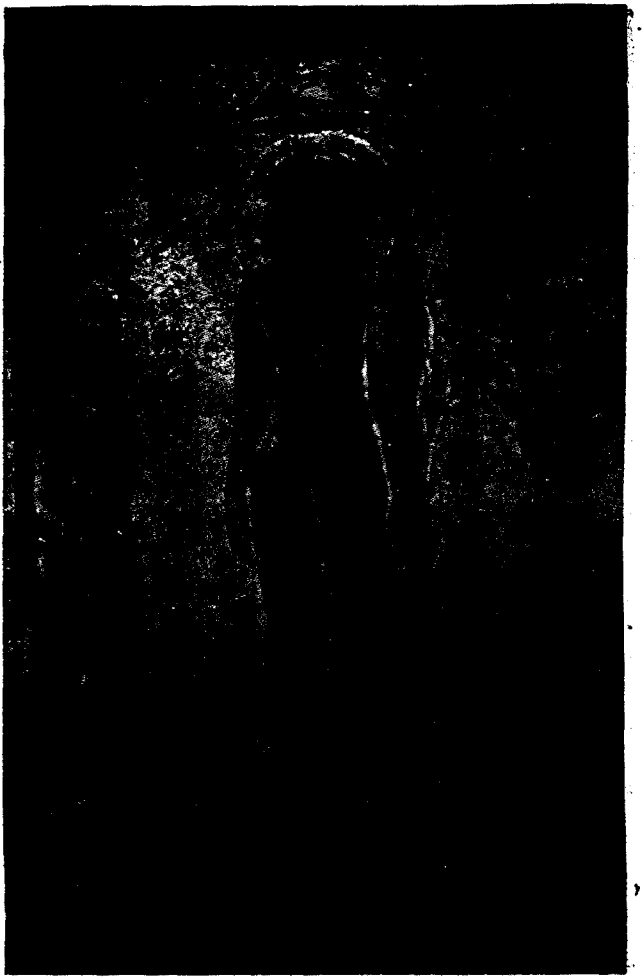

बाहुबली, एलोरा

महावीर ने कहा था

[पूर्वानुवृत्ति]

ब्रह्मचर्य सम्बन्धी

स्त्रियों को देखने मात्र से ही
यदि तुम उसकी कामना करते हो
तो वायु विद्ध हढ़ तृण की भाँति
कभी भी स्थिरता प्राप्त नहीं करोगे।

इसीलिए जो तप निरत हैं
उनको, स्त्रियों का
रूप, लावण्य, हाव-भाव,
हास्य-परिहास,
विलास और विभ्रम
ध्यान से नहीं देखना चाहिए
और मन में भी उनको
स्थान नहीं देना चाहिए।

समस्त नदियों में
वैतरणी नदी
पार होना जैसे दुष्कर है,
समस्त कामनाओं में
स्त्रियों की कामना भी
जय करना वैसे ही दुष्कर है।

दुःशील चरित्र श्रमण को
मृगचर्म या नग्नता,
जटा या पीत वर्ण संघाटि,
या मुण्डित माथा
रक्षा करने में समर्थ नहीं है।

स्त्रियों की ओर नहीं देखना,
उनकी कामना नहीं करना,
उनके विषय की चर्चा नहीं करना,
चिन्तन नहीं करना,
उत्तम ध्यान में सहायक है
एवं जो ब्रह्मचर्य पालन में उद्यत है
उसके अनुकूल है।

ब्रह्मचर्य पालन में जो उद्यत है
वह स्त्री कथा का परिहार करता है,
कारण वह मन को उत्तेजित
और कामना को उद्दीप्त करता है।

ब्रह्मचर्य पालन में जो उद्यत है
वह स्त्रियों की घनिष्ठता का
परिहार करता है
एवं बार-बार उनके संग
वार्तालाप नहीं करता।

ब्रह्मचर्य पालन में जो उद्यत है
वह स्त्रियों के अंग-प्रत्यंगों की
सुन्दरता की ओर
एवं उनके विभ्रम उत्पादक कटाक्षों की
ओर
ध्यान से नहीं देखता,
उनके स्नेहपूर्ण वाक्य भी
वह कानों से नहीं सुनता।

ब्रह्मचर्य पालन में जो उद्यत है
वह स्त्रियों के
कूजन, क्रन्दन, गीत,
हास्य, सित्कार और विलास
सुनने से भी विरत रहता है।

जैन अलंकार साहित्य

पं० अमृतलाल शास्त्री

[पूर्वानुवृत्ति]

काव्यकल्पलतावृत्ति :

काव्यकल्पलता की सूत्र रचना जैनाचार्य श्री अरिसिंह ने की थी और इसकी वृत्ति जैनाचार्य अमर मुनि ने लिखी थी। इन दोनों का समय विद्वानों ने तेरहवीं शती निश्चित किया है। ये दोनों ही अपने समय के विशिष्ट विद्वान थे। इनके अन्य ग्रन्थों का भी विद्वानों ने पता लगाया है। अरिसिंह ने वस्तुपाल की प्रशंसा में 'सुकृत संकीर्तन' महाकाव्य लिखा था और अमर ने 'जिनेन्द्रचरित', 'स्यादिशब्दसमुच्चय', 'बालभारत', 'द्रौपदीस्वयंवर', 'छन्दो-रत्नावली', 'काव्यकल्पलता', 'परिमल' और 'अलंकारप्रबोध' आदि ग्रन्थ लिखे थे।

प्रस्तुत ग्रन्थ में चार प्रतान हैं—१. छन्दसिद्धिप्रतान, २. शब्दसिद्धि-प्रतान, ३. श्लेषसिद्धिप्रतान और ४. अर्थसिद्धिप्रतान। प्रत्येक प्रतान में क्रमशः पाँच, चार, पाँच और सात कुल इक्कीस स्तवक हैं।

कविता निर्माण करने की इसमें सुन्दर विधि बतलाई गई है। और साथ में अन्य भी प्रासंगिक विषयों का वर्णन किया गया है। इस विषय में क्षेमेन्द्र, जयमंगल और हलायुध आदि विद्वानों ने भी ग्रन्थ लिखे। किन्तु वे अत्यन्त संक्षिप्त होने के कारण जिज्ञासा शान्त नहीं कर पाते। प्रस्तुत ग्रंथ का विद्वत् संसार में खूब ही प्रचार हुआ और चौदहवीं शती के ब्राह्मण विद्वान श्री देवेश्वर को यह ग्रन्थ इतना रुचिकर हुआ कि इन्होंने इसी का आधार लेकर नवीन 'कवि कल्पलता' की रचना की जिसमें यत्र-तत्र प्रस्तुत ग्रन्थ की सामग्री का उपयोग किया।

काव्यकल्पलतावृत्ति में कुछ ऐसे विषय हैं, जो कवियों के लिए बहुत ही सहायक हैं।

छन्दों के अभ्यास के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ में लिखा है कि ककार आदि व्यंजनों को भरकर छन्दों का अभ्यास करना चाहिए। ग्यारह अक्षर वाले इन्द्रवज्रा छन्द का अभ्यास करना हो तो उसके लक्षण के अनुसार ककार आदि वर्णों का प्रयोग करें। जैसे—

काका ककाका ककका कका का की की कि की की किकि की किकीकि।
कुकू कुकूकू कुकुकू कुकूकु कं कं क कं कं ककर्कं क कं कम्॥

—काव्यकल्पलतावृत्ति, प्रतान १, स्तवक २

इसी ढंग से अन्य छन्दों का भी अभ्यास करना चाहिए। यह विधि बहुत ही सरल है।

छन्दों की पूर्ति के लिए प्रस्तुत ग्रंथ में हजारों शब्दों का संग्रह कर दिया गया है, जिनके यथास्थान रख देने से छन्द की पूर्ति सरलता से हो सकती है। जैसे—

अनुष्टुप छन्द बनाना हो तो निम्नलिखित अक्षरों में से कोई भी अक्षर उसके प्रथम अक्षर के लिए उपयोगी है। श्री, सं, सन्, द्राक्, विश्, आ, नि, श्राक्, सु, उत्, तत्।

इसी तरह अन्य छन्दों के लिए भी अनेक प्रकार के शब्दों का संकलन प्रस्तुत ग्रन्थ में है। छन्दों के साथ अलंकारों के योग्य शब्दों का भी आश्चर्यजनक संग्रह यहाँ मिलता है। इसी तरह हजारों बातों पर इस ग्रन्थ में प्रकाश डाला गया है, जो विद्वानों को आश्चर्य में डाल देता है।

चौथे प्रतान के सातवें स्तवक में समस्यापूर्ति का क्रम भी बतलाया गया है।

प्रश्न से भी समस्यापूर्ति हो सकती है। जैसे "मृगात् सिंहः पलायते" इस समस्या की पूर्ति—

कस्तूरी जायते कस्मात्? को हन्ति करिणां कुलम्?
किं कुर्यात् कातरो युद्धे? "मृगात् सिंहः पलायते॥"

—काव्यकल्पलतावृत्तिः, ४।७

प्रस्तुत समस्या की पूर्त्ति तीन प्रश्नों से की गयी है। पहला प्रश्न—कस्तूरी किससे होती है? दूसरा प्रश्न—हाथियों के झुण्ड को कौन मारता है? तीसरा प्रश्न—युद्ध में कायर क्या करता है? इन तीनों के क्रमशः उत्तर (१) मृग से (मृगात्), (२) सिंह और (३) भाग जाता है (पलायते)।

'यदि' शब्द के प्रयोग से भी समस्यापूर्त्ति की जा सकती है।

जैसे—"अग्नि स्तुहिनशीतलः" इसकी पूर्त्ति देखिए—

प्रतीच्यां यदि मार्तण्डः समुदेति स्फुरत्करः।
तदा संजायते "नूनमग्निस्तुहिन शीतलः"॥ —का० क०, ४।७

इसी तरह और भी उपाय बतलाये हैं, जिनसे शीघ्र ही समस्या पूर्ति की जा सकती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ भारती साहित्य का भूषण है। श्री देवेश्वर ने इसी के आधार से 'कविकल्पलता' की रचना की। कहीं-कहीं तो पूरे के पूरे श्लोक मिलते-जुलते हैं। कुछ श्लोकों की तुलना नीचे दी जा रही है—

१. अथ वर्ण्यानि कथ्यन्ते तानि-यानि कवीश्वरैः।
महाकाव्यप्रभृतिषु प्रबन्धेषु बबन्धिरे॥
—का० क० वृत्ति, पृष्ठ २४ ; कविकल्पलता, पृष्ठ १२

२. राजाऽमात्य पुरोहितौ नृपवधू राजांगजः सैन्यपो
देशग्रामपुरीसरोऽब्धिसरिदुद्यानान्यरण्याश्रमाः।
मन्त्रो दूतरणप्रयाणमृगयाश्वेभर्त्विनेन्दूदया
वीवाहो विरहः स्वयंवरसुरा पुष्पाम्बुखेलारतम्॥
—काव्यकल्पलता वृत्ति, पृष्ठ २४

राजाराजवधू पुरोहितकुमारामात्यसेनाधिपा
(शेष पंक्तियाँ उपर्युक्त श्लोक के समान)
—कविकल्पलता, पृष्ठ १३

३. ग्रामे धान्यलतावृक्षसरसी पशु पुष्टयः।
क्षेत्रारघट्टकेदारग्रामेयीमुग्धविभ्रमाः॥
—काव्यकल्पलता वृत्ति, पृष्ठ २५

.....मुख विभ्रमाः॥
(शेष उपर्युक्त श्लोकवत्) —कविकल्पलता, पृष्ठ १३

४. पुरेऽट्टपरिखावप्रप्रतोली तोरणालयाः।
प्रासादाध्वप्रयाऽऽरामवापी वेश्यासतीत्वरी॥
—काव्यकल्पलता वृत्ति, पृष्ठ २५

.....तोरणध्वजाः। —कविकल्पलता, पृष्ठ १३
(शेष उपर्युक्त श्लोकवत्)

५. युद्धेतु वर्मबल्वीररजांसि तूर्य
निस्वाननादशरमण्डपरक्तनद्यः।
छिन्नातपत्ररथचामरकेतुकुम्भिः
मुक्तासुरीवृतभटामरपुष्पवर्षाः॥
—काव्यकल्पलता वृत्ति, पृष्ठ २६

.....चाररजांसि तूर्य।
(शेष उपर्युक्त श्लोकवत्) —कविकल्पलता, पृष्ठ १४

अलंकार महोदधि :

अलंकार महोदधि की रचना श्री नरेन्द्रप्रभ सूरि ने वस्तुपाल मन्त्री की प्रार्थना पर अपने गुरु श्री नरेन्द्र सूरि की आज्ञा से की थी।[13] इसकी टीका भी स्वयं नरेन्द्रप्रभ ने विक्रम संवत् १२८२ में समाप्त की थी, जिसका ४५०० (साढ़े चार हजार) अनुष्टुप श्लोक प्रमाण है।[14]

प्रस्तुत ग्रन्थ आठ तरंगों में विभाजित है। काव्य का स्वरूप, प्रयोजन, भेद, शब्द, अर्थ, गुण, दोष, अलंकार और ध्वनि आदि विषयों पर आचार्य नरेन्द्रप्रभ ने विशद् प्रकाश डाला है। काव्यप्रकाश की तरह इसमें भी नाटकीय तत्वों पर प्रकाश नहीं डाला गया है। शेष सभी विषयों पर काव्यप्रकाश से कहीं अधिक विवेचन किया गया है। साहित्यदर्पण इसके सामने बहुत छोटा है। साहित्यदर्पण में अलंकारों का विवेचन काव्यप्रकाश से अधिक है। किन्तु अलंकार महोदधि का अलंकार-विवेचन साहित्यदर्पण से कहीं अधिक है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में पृष्ठ २१२-१३ पर वृत्यानुप्रास के अवान्तर-भेद—कार्णाटी, कौन्तली, कौंगी, कौंकणी, वानवासिका, त्रावणी, माथुरी, मारसी और मागधी आदि बतलाये हैं, जो काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थों में नहीं हैं।

काव्यप्रकाश और काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) के समान प्रस्तुत ग्रन्थों में भी ध्वनि का विस्तार से वर्णन है।

सरल शब्दों में परिभाषा बनाना और सरल उदाहरण चुनना प्रस्तुत ग्रन्थ की विशेषता है। जैसे सार अलंकार की परिभाषा देखिए—'सारः प्रकर्षस्तूत्तरोत्तरम्' (पृष्ठ ३०६)। उदाहरण—

राज्ये सारं वसुधा वसुन्धरायां पुरं पुरे सौधम्।
अजनिसहस्रचतुष्टयमनुष्टुभामुपरि पंच शती ॥

—अलंकार महोदधि, श्लोक ११, पृ० ३४०

'सौधे तल्पं तल्पे वारांगनाऽनंगसर्वस्वम्'। (पृ० ३०६)।

---

[13] तेषां निदेशादथ सद्गुरुणां श्रीवस्तुपालस्य मुदे तदेतत्।
चकारलिप्यक्षरसंनिविष्टं सुरिर्नरेन्द्रप्रभनामधेयः ॥

—अलंकार महोदधि, श्लोक १६, पृष्ठ ३

[14] नयन [2] वसु [8] सूर [12] वर्षे निष्पन्नायाः प्रमाणमेतस्याः।
अजनिसहस्रचतुष्टयमनुष्टुभामुपरि पंचशती ॥

—अलंकार महोदधि, श्लोक ११, पृ० ३४०

अलंकारों के अवान्तर भेद भी प्रस्तुत ग्रन्थ में काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थों से अधिक किए गए हैं।

नाट्यदर्पण :

नाट्यदर्पण आचार्य रामचन्द्र और गुणचन्द्र, दो विद्वानों की कृति है। ये दोनों आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य थे, अतः इनका समय भी वही है ; जो हेमचन्द्र का है। रामचन्द्र और गुणचन्द्र अपने गुरु के समान बहुश्रुत विद्वान् थे। इन्होंने लगभग सौ ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें से चार-पाँच प्रकाशित भी हो चुके हैं। नाट्यदर्पण उन्हीं में से एक है।

नाट्यदर्पण चार विवेकों में विभक्त है। मूल कारिकाएँ क्रमशः चारों विवेकों में ६५, ३७, ५१ और ५४—कुल २०७ हैं और इन पर स्वयं रामचन्द्र और गुणचन्द्र ने विस्तृत विवरण लिखा है जो ४५०० अनुष्टुप छन्द प्रमाण है। विवरण में विषय की विशेष पुष्टि के लिए जैन व जैनेतर ग्रन्थों के उदाहरण दिए गए हैं। भरत ने विस्तृत नाट्य-शास्त्र लिखा था। उसके बाद संक्षेप में नाट्यतत्वों का स्वरूप निरूपण करने वाले मुख्य दो ग्रन्थ हैं—(१) प्रस्तुत नाट्यदर्पण और (२) दशरूपक। दोनों ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय एक ही है, किन्तु रामचन्द्र और गुणचन्द्र ये दोनों नाटकीय तत्व के मर्मज्ञ थे। इन्होंने अनेक ऐसे ग्रंथों के उदाहरण दिये हैं, जो आज अनुपलब्ध हैं।

कहीं-कहीं दोनों ग्रन्थों में मौलिक अन्तर भी है। दशरूपककार नाटकों में शान्त रस नहीं मानते, नाट्यदर्पणकार मानते हैं। दशरूपक में व्यंजना वृत्ति का खण्डन है, नाट्यदर्पण में नहीं है। नाट्यदर्पण में रस को सुख-दुःखात्मक बतलाया गया है—"सुख दुःखात्मको रसः", पृष्ठ १४१। शृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत और शान्त इन पाँचों को सुखात्मक और करुण, रौद्र, वीभत्स तथा भयानक इन चारों को दुःखात्मक बतलाया है। दशरूपक में रूपकों की संख्या दस स्वीकार की है, जबकि नाट्यदर्पण में बारह।

अलंकार चिन्तामणि :

इसके रचयिता आचार्य अजितसेन हैं। इनका समय चौदहवीं शती है। इन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ में जैन ग्रन्थों के ही उदाहरण दिए हैं। जैनेतर ग्रन्थों के भी उदाहरण हैं, किन्तु ऐसे उदाहरणों की संख्या बहुत ही कम है। अर्हद्दास के मुनिसुव्रत काव्य के भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत ग्रन्थ में हैं, अतः प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता का समय १४वीं शती है। अर्हद्दास का समय विक्रम की तेरहवीं शती का अन्तिम चरण और चौदहवीं का प्रथम चरण है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में पाँच परिच्छेद है, जिनमें श्लोकों की संख्या क्रमशः १०३, ८६, ४१, ३४५ और ३००—कुल ८७५ है। गद्य रूप में लिखी गई वृत्ति की संख्या पृथक है।

इस रचना में कविशिक्षा, शब्दालंकार, अर्थालंकार, गुण-दोष और रस आदि पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ शब्दालंकारों का इतना अधिक वर्णन है जितना अन्य जैन अलंकार ग्रन्थों में नहीं है। जैनेतर ग्रन्थों में भी भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण को छोड़कर अन्य में नहीं है। अलंकारों में उपमा का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। दण्डी को छोड़कर इतना अधिक इस ढंग का वर्णन अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता। इस रचना का अलंकार-विवेचन हृदयग्राही है, अतः अलंकार चिन्तामणि नाम सार्थक है।

अलंकारों के पारस्परिक सूक्ष्म अन्तर को बतलाने के लिए इस ग्रन्थ के चौथे परिच्छेद के प्रारम्भ में जो प्रकाश डाला गया है, वह अन्य ग्रन्थों में एकत्र नहीं मिलता। यों अन्य ग्रन्थों में भी खोजने पर मिल सकता है, किन्तु एक ही स्थान पर इतना अधिक विवेचन मेरे देखने में नहीं आया।

यहाँ नाटकीय तत्वों को छोड़कर शेष अलंकार शास्त्र सम्बन्धी सभी बातों पर विशद् प्रकाश डाला गया है। आचार्य अजितसेन ने ध्वनि की परिभाषा मात्र बतलाकर ग्रन्थ विस्तार भय से उसका विवेचन नहीं किया।

शब्दालंकार का विवेचन अर्थालंकार के विवेचन की अपेक्षा कठिन होता है। किन्तु अजितसेन ने उसे भी सरल बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। श्लोक पढ़ते ही समझ में आ जाते हैं।

चित्र-प्रकरण में अक्षरच्युत प्रश्नोत्तर का सुन्दर और मनोरंजक उदाहरण देखिए—

प्रश्न : कः पंजरमध्यास्ते ? कः परुष निस्वनः ?
कः प्रतिष्ठा जीवानां ? कः पाठ्योक्षऽरच्युतः ?

उत्तर : शुकः पंजरमध्यास्ते काकः परुषनिस्वनः।
लोकः प्रतिष्ठा जीवानां श्लोकः पाठ्योक्षऽरच्युतः ॥ २।३१-३२

प्रथम पद्य में चार प्रश्न किए गए हैं—पिंजरे में कौन बन्द किया जाता है ? कर्कश स्वर वाला कौन होता है ? जीवों का आश्रय स्थान क्या है ? अक्षर छोड़कर किसे पढ़ सकते हैं ? दूसरे पद्य में चारों प्रश्नों के क्रमशः चार उत्तर दिए गए हैं : तोता, कौआ, लोक और श्लोक। जिस श्लोक में प्रश्न किए गए हैं, उसके प्रत्येक चरण में सात-सात अक्षर हैं। उनके प्रारम्भ में एक-एक अक्षर और जोड़ देने से उत्तर सहित दूसरा पद्य बन गया है।

इस तरह शब्दालंकारों का वर्णन आदि से अन्त तक सरस है। इसी तरह ७० अर्थालंकारों और उनके अवान्तर भेदों की चर्चा भी सरस और सरल है।

प्रस्तुत ग्रंथ में अर्थालंकारों की परिभाषाएँ भी बहुत परिष्कृत हैं। जैसे उपमा अलंकार की परिभाषा देखिए—

वर्ण्यस्य साम्यमन्येन स्वतः सिद्धेन धर्मतः।
भिन्नेन सूर्यमीष्टेन वाच्यं यत्रोपमैकदा ॥ ४।१८

उपमेय से भिन्न, स्वतःसिद्ध, विद्वानों के द्वारा मान्य, अप्रस्तुत अर्थात् उपमान के साथ जहाँ किसी धर्म की दृष्टि से समानता बतलाई जाय, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

जैनेतर उच्चकोटि के अलंकार ग्रन्थों में 'साधर्म्यमुपमा' अर्थात् उपमेय की उपमान के साथ समानता दिखलाने को उपमा कहते हैं। अलंकार-चिन्तामणिकार ने यद्यपि इस परिभाषा का खण्डन नहीं किया, किन्तु उन्होंने अपनी उपमा की परिभाषा में उपमान के तीन विशेषण लगाये हैं। यदि ये नहीं लगाये जाते, तो अन्य अलंकारों में उपमा का लक्षण चला जाता। फलतः उपमा का लक्षण अतिव्याप्ति दोष से दूषित हो जाता। यदि 'स्वतः भिन्नेन' 'उपमेय से भिन्न' यह विशेषण न देते, तो अनन्वयालंकार में परिभाषा चली जाती, क्योंकि अनन्वय में उपमेय और उपमान अभिन्न होते हैं, 'स्वतः सिद्धेन' 'स्वयं सिद्ध' विशेषण नहीं देते, तो उत्प्रेक्षा में लक्षण चला जाता, क्योंकि उत्प्रेक्षा में उपमान स्वयंसिद्ध नहीं, बल्कि कल्पित होता है। 'सूर्यमीष्टेन' 'विद्वानों के द्वारा मान्य' यह विशेषण न देते, तो प्रस्तुत लक्षण 'हीनोपमा' में चला जाता। इसी प्रकार अन्य अलंकारों की परिभाषा भी परिष्कृत है।

काव्यानुशासन :

इसके लेखक अभिनव वाग्भट हैं। इनका समय १४वीं शताब्दी है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पृष्ठ ४२ पर उदात्तालंकार का जो उदाहरण[१५] वाग्भट ने दिया है, वह नरेन्द्रप्रभ सूरि के अलंकारमहोदधि—जिसकी रचना वि० सं० १२८२ में समाप्त हुई थी—को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलता। अतः वाग्भट का समय १४वीं शताब्दी निश्चित है। प्रस्तुत ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति का

---

१५. उच्चीयन्ते स्म वेश्मन्यशनविरहिते यत्नतः श्रोत्रियाणां
यत्र श्यामाक बीजान्यपि चटकवधूचंचुकोटिच्युतानि।
यस्मिन् दातर्यकस्माच्चटुलवटुकराकृष्टमुक्ताबचूल
भ्रष्टास्तत्रैव दृष्टा युवतिभिरलसं घूर्णिता मौक्तिकौघाः ॥

उल्लेख इगलिंग कैटलॉग न० ११५७ पर है। इस लिखित प्रति पर लेखन-काल वि० सं० १५१५ है।

वाग्भट के पिता का नाम नेमिकुमार और पितामह का श्री मक्कलय था। इनका निवास स्थान मेवाड़ है। ये अपने समय के बहुत धनिक व्यापारी और उच्चकोटि के लेखक या महाकवि थे। इन्होंने अनेक महाकाव्य लिखे थे।[१६] इन्होंने अपना परिचय काव्यानुशासन के प्रारम्भ में दिया है। विशेष जानकारी के लिए इन पंक्तियों के लेखक का "महाकवि वाग्भट और उनका काव्यानुशासन" शीर्षक लेख देखिए, जो 'जैन सिद्धान्त भास्कर', भाग २२, किरण २ (सन् १९५५) में प्रकाशित हो चुका है।

काव्यानुशासन सूत्र शैली में लिखा गया छोटा-सा, किन्तु महत्वपूर्ण अलंकार ग्रन्थ है। इसके पाँच अध्यायों में क्रमशः ६२, ७५, ६८, २६ और ५८ कुल—२८६ सूत्र हैं। सूत्रों के ऊपर वाग्भट ने स्वयं 'अलंकारतिलक-वृत्ति' नाम की टीका लिखी है। सूक्ष्म दृष्टि से ग्रन्थ देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वाग्भट हेमचन्द्र से बहुत प्रभावित थे। वे उन्हें अपना समझते थे, अतः उनके ग्रन्थ का नाम (काव्यानुशासन), सूत्र शैली और कुछ सूत्र तथा कुछ टीका का अंश भी अपने ग्रन्थ में ले लिया है।

ग्रन्थ बहुत सरल है। इसमें अलंकार सम्बन्धी सभी तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। जो बात सूत्र में नहीं कही जा सकी, वह टीका में कह दी गयी है। टीका बहुत महत्वपूर्ण है।

हेमचन्द्र ने ध्वनि का समर्थन जोरदार शब्दों में किया है, किन्तु वाग्भट ने उसे 'पर्यायोक्त' अलंकार में गर्भित किया है। सभी अलंकार ग्रन्थों में काव्यों से उदाहरण लिये गए हैं, किन्तु वाग्भट ने दोष प्रकरण में मम्मट और दण्डी आदि के अलंकार ग्रन्थों के मंगलाचरण के पद्यों को उद्धृत कर उनमें दोष बतलाये हैं।

काव्यालंकार सार :

इस ग्रन्थ के प्रणेता श्री भावदेव सूरि हैं। इनका समय विक्रम की पन्द्रहवीं

---

[१६] नव्यानेकमहाप्रबन्धरचनाचातुर्यविस्फूर्जित
स्फारोदारयशःप्रचारसततव्याकीर्णविश्वत्रयः।
श्रीमन्नेमिकुमारसूनुरखिलप्रज्ञालुचूड़ामणिः
काव्यानामनुशासनं वरमिदं चक्रे कविर्वाग्भटः॥

शती का प्रथम चरण है। इसकी सूचना स्वयं इन्होंने अपने पार्श्वनाथ चरित महाकाव्य की प्रशस्ति में दी है।[१७]

काव्यालंकार में आठ अध्याय है। जिनमें क्रमशः ५+१५+२४+१३+ १३+ ४९+५+८=१३२ श्लोक हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में काव्य का स्वरूप, हेतु, फल (१) शब्दार्थ स्वरूप (२) शब्दार्थ दोष (३) गुण (४) शब्दालंकार (५) अर्थालंकार (६) रीति (७) और रस (८) इन साहित्यिक तत्वों पर संक्षिप्त और सारगर्भ प्रकाश डाला गया है।

आचार्य श्री भावदेवसूरि ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के अलंकार ग्रन्थों का गम्भीर चिन्तन कर प्रस्तुत ग्रन्थ बनाया है। अभी तक प्रकाशित हुए अलंकार ग्रन्थों में इतना सरल और सरस ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आया। अलंकार शास्त्र के अध्ययन करने वालों को सबसे पहले यही ग्रन्थ पढ़ना चाहिए।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ और भी जैन अलंकार ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, किन्तु वे इस समय सामने नहीं हैं, अतः उनके बारे में यहाँ कुछ नहीं लिखा जा सकता।

अनेक जैन विद्वानों ने जैनेतर अलंकार ग्रन्थों पर महत्वपूर्ण टीकाएँ लिखी हैं। काव्यप्रकाश पर सबसे पहली 'संकेता' नाम की टीका प्रकाशित हो चुकी है। इसके कर्त्ता जैन विद्वान श्री माणिक्यचन्द्र हैं। रुद्रट के काव्यालंकार पर जैन विद्वान श्री नमिसाधु ने टीका लिखी थी, जो प्रकाशित हो चुकी है। आचार्य सिद्धचन्द्र ने 'काव्यप्रकाश विवरण' लिखा था। यह भी प्रकाशित हो चुका है।

अलंकार शास्त्र का अविकल अध्ययन, मनन और चिन्तन करने वालों के लिए उक्त ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है।

---

[१७] तेषां विनेयविनयी बहु भावदेव सूरिः प्रसन्नजिनदेवगुरुप्रसादात्।
श्रीपत्तनाख्यनगरे रविविश्ववर्षे पार्श्वप्रभोश्चरितरत्नमिदं ततान॥

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

तदुपरान्त विद्युत्कुमारों के इन्द्र हरि और हरिसह, सुवर्णकुमारों के इन्द्र वेणुदेव और वेणुदारी, अग्निकुमार देवों के इन्द्र अग्निशिख और अग्निमानव, वायुकुमार देवों के इन्द्र वेलम्ब और प्रभंजन, स्तनितकुमारों के इन्द्र सुघोष और महाघोष, उदधिकुमार देवों के इन्द्र जलकान्त और जलप्रभ, द्वीपकुमार देवों के इन्द्र पूर्ण और अवशिष्ट एवं दिक्कुमार देवों के इन्द्र अमित और अमितवाहन भी आए।

व्यन्तर देवताओं में पिशाचों के इन्द्र काल और महाकाल, भूतों के इन्द्र सुरूप और प्रतिरूप, यक्षों के इन्द्र पूर्णभद्र और मणिभद्र, राक्षसों के इन्द्र भीम और महाभीम, किन्नरों के इन्द्र किन्नर और किम्पुरुष, किम्पुरुषों के इन्द्र सत्पुरुष और महापुरुष, महोरगों के इन्द्र अतिकाय और महाकाय, गन्धर्वों के इन्द्र गीतरति और गीतयशा, अप्रज्ञप्ति और पंच प्रज्ञप्ति आदि व्यंतर देवों के अन्य आठ निकायों (जिन्हें वाण व्यंतर कहा जाता है) के सोलह इन्द्र जिनमें अप्रज्ञप्तियों के इन्द्र सन्निहित हैं और समानक, पंच प्रज्ञप्तियों के इन्द्र धाता और विधाता, ऋषिवादितों के इन्द्र ऋषि और ऋषिपालक, भूतवादिनों के इन्द्र ईश्वर और महेश्वर, क्रन्दितों के इन्द्र सुवत्सक और विशालक, महाक्रन्दितों के इन्द्र हास और हासरति, कुष्माण्डकों के इन्द्र श्वेत और महाश्वेत, पावकों के इन्द्र पावन और पावकपति एवं ज्योतिष्कों के सूर्य और चन्द्र इन्हीं दो नामों के असंख्य इन्द्र इस प्रकार कुल चौसठ इन्द्र एक साथ मेरु शिखर पर आए।

फिर अच्युतेन्द्र जिनेश्वर के जन्मोत्सव के उपकरण लाने के लिए आभियोगिक देवों को आदेश दिया। वे तुरन्त ईशान दिशा में गए। वहाँ वैक्रिय समुद्घात से मुहूर्त्त भर में उत्तम पुद्गल परमाणु आकृष्ट कर वे सुवर्ण के, रजत के, रत्न के, सुवर्ण और रजत के, सुवर्ण और रत्नों के, सुवर्ण, रजत और रत्नों के, रजत और रत्नों के और इसी प्रकार मिट्टी के अतः आठ प्रकार के प्रत्येक ही एक हजार आठ (कुल ८०६४) एक योजन ऊँचे सुन्दर कलशों का निर्माण किया। कलशों की संख्या के अनुपात में आठ प्रकार के पदार्थों की झारियाँ, दर्पण, रत्न-करण्डिका, सुप्रतिष्ठक थाल, रात्रिका और पुष्पों की डालियाँ प्रत्येक ही ८०६४ होने से ५६४४८ बर्त्तन और कलशों सहित ६४५१२ जैसे पूर्व ही निर्मित कर लिए हों इस प्रकार शीघ्र तैयार कर वहाँ ले आए।

फिर आभियोगिक देवतागण उन कलशों को लेकर क्षीर-समुद्र के जल से वर्षा के जल की भाँति भरकर वहाँ से पुण्डरिक उत्पल और कोकनद जाति के कमल ले आए जिससे इन्द्र सहजतया समझ सकें कि वे क्षीर-समुद्र का जल ले आए हैं। भारी जलाशय (कूप, वापी और सरोवर) से जल भरने के समय जिस प्रकार कलश उठाया जाता है उसी प्रकार देवता कलश हाथ में उठाकर पुष्करवर समुद्र के तट पर आए और वहाँ से पुष्कर जाति के कमल लिए। फिर वे मगधादि तीर्थ स्थल गए और वहाँ से जल और मिट्टी ली जैसे वे और अधिक कलशों का निर्माण करना चाहते हों। वस्तु क्रयकारी जिस प्रकार नमूना लेते हैं उसी प्रकार उन लोगों ने गंगा आदि महानदी का जल लिया। क्षुद्र हिमवन्त पर्वत से सिद्धार्थ के फूल, श्रेष्ठ सुगन्ध की वस्तुएँ और सब प्रकार की औषधियाँ लीं। उस पर्वत से उन्होंने पद्म नामक सरोवर से निर्मल सुगन्धित पवित्र जल और कमल लिए। एक ही कार्य के लिए प्रेरित होने के कारण वे परस्पर प्रतिस्पर्द्धी बन द्वितीय वर्षधर पर्वत स्थित सरोवर से पद्म आदि संग्रह किए। समस्त क्षेत्र से वैताढ्य पर्वत से और अन्य विजयों से अतृप्त देवताओं ने प्रभु के प्रसाद की तरह जल और कमल लिए। वक्षार नामक पर्वतों से उन्होंने पवित्र और सुगन्धित वस्तुएँ इस प्रकार ग्रहण कीं जैसे उनके लिए ही वे रक्षित थीं। आलस्यहीन उन देवताओं ने उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्रों के तालाबों का जल कलशों में इस प्रकार भरा जैसे श्रेय द्वारा अपनी आत्मा को ही पूर्ण कर लिया हो। भद्रशाला नन्दन और पाण्डुक वन से उन्होंने गोशीर्ष चन्दन आदि वस्तुएँ संग्रहित कीं। जिसप्रकार गन्धी समस्त सुगन्धित द्रव्य एकत्रित करता है उसी प्रकार सुगन्धित जल और द्रव्य एकत्रित कर वे उसी मुहूर्त्त में मेरु पर्वत पर पहुँचे।

तदुपरान्त दश हजार सामानिक देवता, चालीस हजार आत्म-रक्षक देवता, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवता, तीन सभा के समस्त देवता, चार लोकपाल, सात वृहत् सैन्यवाहिनी और सेनापति द्वारा परिवृत होकर आरण और अच्युत देवलोक के इन्द्र पवित्र होकर भगवान को स्नान कराने के लिए प्रस्तुत हो गए। पहले अच्युतेन्द्र उत्तरासंग धारण कर निःसंग भक्ति से प्रस्फुटित पारिजात आदि पुष्पों को अंजलि में लेकर सुगन्धित धूप के धुएँ से धूपित कर त्रिलोक नाथ के सम्मुख रखे। फिर देवतागण भगवान के सान्निध्य के लिए आनन्द से जैसे हँस रहे हों ऐसे पुष्पमाल्य सुशोभित सुगन्धित जल के कलशे वहाँ लाकर रखे। उन जलपूर्ण कलशों पर भ्रमर गुंजित कमल रखे हुए थे इससे लगता था जैसे वे भगवान का प्रथम स्नात्र मंगल पाठ कर रहे हों। कलश ऐसे

प्रतीत होते थे जैसे वे पाताल कलश हों और प्रभु को स्नान कराने के लिए ही लाए गए हों। अपने सामानिक देवताओं सहित अच्युतेन्द्र ने उन एक हजार आठ कलशों को इस प्रकार उठाया जैसे वे उनकी सम्पत्ति का फल हों। दोनों बाहुओं के अग्रभाग स्थित ऊपर उठाए हुए वे कलश मृणाल युक्त कमल कलिका का भ्रम उत्पन्न करते थे। फिर अच्युतेन्द्र ने अपने मस्तक के साथ कलश को जरा झुकाकर जगत्पति को स्नान कराना आरम्भ किया।

उसी समय कुछ देवता गुफाओं से लौटकर आने वाली प्रतिध्वनि द्वारा मेरु पर्वत को वाचाल कर आनक नामक मृदंग बजाना प्रारम्भ किया। भक्ति से तत्पर अन्य देवतागण समुद्र मन्थन कालीन ध्वनि-सी ध्वनित दुंदुभी बजाने लगे। फिर अन्य देवगण भक्ति से उन्मत्त होकर सागर तरंगों से प्रतिहत पवन की भाँति आकुल ध्वनिकारी झांझ बजाने लगे। कुछ देवता जैसे ऊर्द्धलोक में जिनादेश विस्तृत कर रहे हों इस प्रकार उच्च मुख सम्पन्न भेरी बजाने लगे। अन्य देवता मेरु पर्वत के शिखर पर आरूढ़ होकर गोपगण जैसे शृंग ध्वनि करते हैं उस प्रकार उच्च निःस्वनकारी काहल नामक वाद्य बजाने लगे। कुछ देवगण (भगवान के जन्माभिषेक की घोषणा करने के लिए) दुष्ट शिष्य को जिसप्रकार हाथ से पीटा जाता है उसी प्रकार हाथों से पीटकर मुरज नामक वाद्य बजाने लगे। कुछ देवता वहाँ आए असंख्य सूर्य और चन्द्र की प्रभा को हरणकारी सुवर्ण और रौप्य की झालरें बजाने लगे। अन्य देवगण मुख में जैसे अमृत का गण्डुष भरा हो इस प्रकार अपने उन्नत मुख को फुला-फुला कर शंख बजाने लगे। इस प्रकार देवताओं द्वारा बजाए हुए विभिन्न प्रकार के वाद्यों की प्रतिध्वनि से आकाश वाद्य न होने पर भी एक वाद्य ही बन गया।

चारण मुनिगण उच्च स्वर से बोले—"हे जगन्नाथ, हे सिद्धगामी, हे कृपा-सागर, हे धर्म-प्रवर्त्तक, आपकी जय हो, आप सुखी हों।"

अच्युतेन्द्रने ध्रुवपद, उत्साह, स्कन्धक, गलित और वास्तुवदन नामक मनोहर गद्य और पद्य द्वारा भगवान की स्तुति की। फिर धीरे-धीरे अपने परिवार के देवों सहित भुवनकर्त्ता (आदिनाथ) भगवान पर कलशों में भरा जल ढालने लगे। भगवान के मस्तक पर जल-धार वर्षणकारी वे कलश मेरुपर्वत के शिखर पर वारिधारा बरसाने वाले मेघों की भाँति लगने लगे। भगवान के मस्तक के दोनों ओर झुके हुए देवताओं के कलशों ने माणिक्य मुकुट-सी शोभा धारण कर ली। एक योजन विस्तृत कलश मुख से निकलती हुई जलधारा पर्वत कन्दराओं से निर्गत स्रोतस्विनी-सी लगने लगी। प्रभु के मस्तक से आहत होकर चारों ओर बिखरे जल-कण धर्मवृक्ष के अंकुर की भाँति प्रतिभासित होने लगे।

प्रभु के शरीर पर गिरते ही क्षीर-समुद्र का सुन्दर जल फैलकर मस्तक पर श्वेत छत्र-सा, ललाट पर कान्तिमान ललाट-भूषण-सा कानों के प्रान्तदेश पर विश्रान्त नेत्रों की कान्ति-सा, गण्डदेश पर कर्पूर की पत्रावलि-सा, ओष्ठों पर स्मित हास्य कान्ति कलाप-सा, कण्ठ भाग में मुक्तामाल-सा, स्कन्ध देश में गोशीर्ष चन्दन के अनुलेपन-सा बाहुद्वय और पृष्ठ देश पर वृहत वस्त्र-सा लगने लगा।

चातक जैसे स्वाति नक्षत्र का जल ग्रहण करता है उसी भाँति कुछ देवता स्नात्र के उस जल को धरती पर गिरते ही श्रद्धा से ग्रहण करने लगे। कुछ देवगण मारवाड़ के अधिवासियों की भाँति ऐसा जल और कहाँ मिलेगा समझकर अपने सिर पर ढालने लगे। अन्य देवगण ग्रीष्म के उत्ताप से व्याकुल हस्ती की भाँति आनन्द मना उस जल से निज देह को सींचन करने लगे। मेरुपर्वत के शिखर पर तेजी से प्रसारित होकर उस जलधारा ने चारों ओर हजारों निर्झरों का भ्रम उत्पन्न कर क्रमशः पाण्डुक, सोमनस, नन्दन और भद्रशाल उद्यान में विस्तृत होकर महती नदी का रूप धारण कर लिया। स्नान कराते-कराते कलशों का मुख नीचे हो गया यह देखकर लगा जैसे स्नान कराने की जलरूप सम्पत्ति कम हो जाने से वे लज्जित हो गए हों। तभी इन्द्र की आज्ञा से संचरमान आभियोगिक देवतागण रिक्त कलशों को अन्य पूर्ण कलशों के जल से भरने लगे। एक हाथ से अन्य हाथ में और इस प्रकार अनेक हाथों में जाने के कारण वे कलशें धनिकों के बालकों जैसे लगने लगे। नाभिराज पुत्र के निकट रक्षित कलशों की पंक्तियाँ आरोपित स्वर्ण-कमल की माला की तरह सुशोभित हो रही थी। शून्य कुम्भ में जल ढालने के समय जो शब्द हो रहा था उससे लगता था कुम्भ जैसे प्रभु की स्तुति कर रहें हों। देवतागण उन भरे कलशों से पुनः अभिषेक करने लगे। यक्ष जैसे चक्रवर्ती के निधान कलश को भरते हैं उसी प्रकार भगवान को स्नान कराने से खाली हुए इन्द्र के कलशों को देवता लोग भरने लगे। बार-बार खाली होने से, बार-बार भरने से, बार-बार लाने ले जाने से वे कलशे ऐसे लगने लगे मानों वे जल ले जाने के यन्त्र पर आरूढ़ हों। इस प्रकार अच्युतेन्द्र ने एक करोड़ कलशों से भगवान को स्नान कराया और स्वयं को पवित्र किया। यह भी एक आश्चर्य ही है।

फिर आरण और अच्युत देवलोक के अधिपति अच्युतेन्द्र दिव्य गन्ध कषाय वस्त्रों से प्रभु के शरीर को पोछने के साथ-साथ अपनी आत्मा को भी

पोंछ लिया। प्रातः और सन्ध्या काल के आकाश का चक्रवाल सूर्य मण्डल के स्पर्श से जिस प्रकार शोभित होता है उसी प्रकार गन्ध-कषायी वस्त्र भगवान के शरीर स्पर्श से शोभित होने लगे। पोंछने के पश्चात् भगवान की देह स्वर्णसार के सर्वस्व-सी, स्वर्णगिरि के एक भाग से निर्मित हो ऐसी लगने लगी।

तत्पश्चात् आभियोगिक देवताओं ने गोशीर्ष चन्दन रस का कर्दम सुन्दर और विचित्र पात्र में घोलकर अच्युतेन्द्र के निकट रखा। इन्द्र ने भगवान के शरीर में उसी गोशीर्ष चन्दन का इस प्रकार विलेपन करना प्रारम्भ किया जैसे चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका से मेरु शिखर का लेपन करता है। उसी समय कुछ देवगण पट्टवस्त्र धारण कर, जिससे धूप का धुँआ उठ रहा था ऐसी धूपदानी हाथ में लेकर भगवान के चारों ओर खड़े हो गए। जो धूप दे रहे थे उन्हें देखकर लगता था जैसे वे स्निग्ध धूप रेखा से मेरु पर्वत-सी द्वितीय श्याम वर्ण चूलिका निर्मित कर रहे हों। जिन्होंने भगवान पर श्वेत-छत्र धारण कर रखा था उन्हें देखकर मन में होता था वे आकाश-रूपी सरोवर को कमलमय कर रहे हैं। जो चँवर डुला रहे थे उन्हें देखकर लगता था मानों प्रभु दर्शन के लिए आत्मीय-परिजनों को बुला रहे हैं। जो कमर-बन्ध बाँधकर अस्त्र धारण किए प्रभु के चारों ओर खड़े थे वे भगवान के अंग रक्षक से लग रहे थे। जो स्वर्ण और माणिक्य के पंखों से भगवान को हवा दे रहे थे वे मानों आकाश में चमकित विद्युत लीला दिखा रहे थे। जो आनन्द से विचित्र वर्णों के दिव्य पुष्पों की वर्षा कर रहे थे वे वर्षिक से लग रहे थे। कुछ देवता अत्यंत सुगन्धित द्रव्य को चूर्ण करके चारों ओर निक्षेप कर रहे थे मानों वे अपना-अपना पाप निकाल कर फेंक रहे हैं। कुछ देवता स्वर्ण उत्क्षिप्त कर रहे थे जैसे वे स्वामी की आज्ञा पाकर मेरु पर्वत की ऋद्धि को बढ़ा रहे हैं। कुछ देव महार्घ रत्न बरसा रहे थे। वे रत्न आकाश से उतरते तारों सदृश लगते थे। कुछ देव अपने सुमधुर गले से गन्धर्वों को भी लज्जित करते हुए नूतन ग्राम (तार, मध्य व षड़ज आदि स्वर) और राग में भगवान का गुणगान कर रहे थे। कुछ देवगण मण्डित, घण और छिद्रयुक्त वाद्य बजाने लगे। कारण भगवान की भक्ति नाना प्रकार से की जाती है। कुछ देव अपने चरणपात से मेरु को कम्पित करते हुए नृत्य कर रहे थे। उन्होंने तो जैसे मेरु को ही नृत्य परक कर दिया था। कुछ देवगण अपनी-अपनी देवियों सहित नाना भावों के हाव-भाव का प्रदर्शन कर उच्चकोटि का नाटक दिखाने लगे। कुछ देवता आकाश में उड़ रहे थे। वे गरुड़ पक्षी से लग रहे थे। कुछ

कुक्कुट की भाँति क्रीड़ा करते हुए धरती पर उत्पतित हो रहे थे। कुछ नट-सी सुन्दर चाल प्रदर्शित कर रहे थे। कुछ प्रसन्नता से सिंह की भाँति सिंहनाद कर रहे थे, कुछ हस्ती की भाँति उच्च वृंहतिनाद कर रहे थे तो कुछ आनन्द में अश्व की भाँति हूं स्वारव। कुछ रथचक्र-सा घर्घर शब्द कर रहे थे। कुछ विदूषक की भाँति हास्य उत्पन्नकारी चार प्रकार का शब्द कर रहे थे। बन्दर जैसे कूद-कूद कर वृक्ष शाखा को आन्दोलित करता है उसी भाँति कुछ देवता उछल-उछल कर मेरु शिखर को आन्दोलित कर रहे थे। कुछ देव धरती पर अपना हाथ इस प्रकार पटक रहे थे जैसे वे संग्राम प्रतिज्ञा-कारी योद्धा हों। कुछ बाजी जीत ली हो ऐसा चीत्कार कर रहे थे। कुछ वाद्य यन्त्रों की तरह फूले हुए अपने-अपने गाल बजा रहे थे। कुछ नट की भाँति चित्र-विचित्र रूप धारण कर कूद रहे थे। कुछ रमणियाँ जैसे गोलाकार होकर बैठती है उसी प्रकार गोलाकार होकर मनोहर नृत्य के साथ सुमधुर गीत गा रहे थे। कुछ अग्नि की भाँति प्रज्वलित हो रहे थे। कुछ सूर्य की भाँति तापदान कर रहे थे। कुछ मेघ की भाँति गरज रहे थे। कुछ विद्युत की भाँति चमक रहे थे। कुछ पूर्ण भोजन के पश्चात् बटुक की भाँति अपना उदर प्रदर्शन कर रहे थे। प्रभु प्राप्ति के आनन्द को भला कौन छिपाकर रख सकता है? इस प्रकार जब देवगण आनन्द मना रहे थे अच्युतेन्द्र ने प्रभु को लेपन किया, पारिजातादि विकसित पुष्प से भक्ति पूर्वक पूजा की और कुछ पीछे हटकर भक्ति में नम्र होकर शिष्य की भाँति भगवान की वन्दना की।

अग्रज के पश्चात् जिस प्रकार अनुज करते हैं उसी प्रकार अन्य बासठ इन्द्रों ने भी स्नान विलेपन द्वारा प्रभु की पूजा की।

फिर सौधर्मेन्द्र की भाँति ईशानेन्द्र ने भी अपना पाँच रूप बनाया। एक रूप से उन्होंने भगवान को गोद में लिया, दूसरे से कर्पूर की भाँति छत्र धारण किया। छत्र में मुक्ता-झालर ऐसी लगती थी मानों इन्द्र दिक् समूह को नृत्य करने का आदेश दे रहे हों। अन्य दो रूप से प्रभु के दोनो ओर के चामर वीजन करने लगे। वीजन रत उनके दोनों हाथ ऐसे लग रहे थे जैसे वे हर्ष से नृत्य कर रहे हैं। पाँचवें रूप से वे प्रभु के सम्मुख इस प्रकार खड़े थे मानों प्रभु के दृष्टिपात से स्वयं को पवित्र कर रहे हैं।

फिर सौधर्मेन्द्र कल्प के इन्द्र ने जगत्पति के चारों ओर स्फटिक मणि के चार ऊँचे और पूर्ण अवयव वाले चार वृषभ तैयार किए। उच्च शृंग शोभित वे चारों ही वृषभ चन्द्रकान्त रत्न निर्मित चार क्रीड़ा पर्वत की

भाँति प्रभु के चारों ओर सुशोभित होने लगे। चार वृषभों के आठ शृंगों से आकाश से जलधारा इस भाँति गिरने लगी मानो धरती भेदकर वे निकल रही हैं। उद्गम स्थल में पृथक-पृथक, किन्तु, शेष पर्यन्त मिली हुई वे जलधाराएँ आकाश में नदी संगम का भ्रम उत्पन्न कर रही थीं। सुरासुर रमणियाँ कौतुक पूर्वक उन जलधाराओं को देखने लगीं। वे धाराएँ प्रभु के मस्तक पर उसी प्रकार गिर रही थीं जैसे नदी समुद्र में गिरती है। जलयंत्रों से शृंग से निर्गत उस जलधारा में शक्रेन्द्र आदि ने तीर्थंकर भगवान को स्नान करवाया। भक्ति से जिस प्रकार हृदय आर्द्र हो जाता है उसी प्रकार भगवान के मस्तक पर गिरते हुए उस स्नान जल के शिकर कणों से दूर खड़े होने पर भी देवताओं के वस्त्र आर्द्र होने लगे। फिर इन्द्र ने उन चारों वृषभ को उसी प्रकार अदृश्य कर दिया जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक इन्द्रजाल से निर्मित वस्तु को अदृश्य कर देता है। स्नान करवाने के पश्चात् स्नेहशील देवराज देवदुष्य वस्त्र से प्रभु की देह इस प्रकार पोंछने लगे मानों वे रत्नों का दर्पण पोंछ रहे हैं। फिर रत्नमय पट्टिका पर निर्मल और रजत के अखण्ड अक्षतों से प्रभु के सम्मुख अष्टमंगल अंकित किए। तदुपरान्त मानों स्वयं के अशेष अनुराग की भाँति उत्तम अंगराज से तीन जगत के गुरु के अंगोंपर लेपन किया। प्रभु के हास्यमय मुख की मुखचन्द्रिका का भ्रम उत्पन्न करने वाले उज्ज्वल और दिव्य वस्त्र से इन्द्र ने उनकी पूजा की एवं विश्वश्रेष्ठता का चिह्न स्वरूप वज्रमाणिक्य का सुन्दर मुकुट भगवान के मस्तक पर पहनाया। कानों में सुवर्ण कुण्डल पहनाए जो सन्ध्याकालीन पश्चिम और पूर्व दिग्स्थित सूर्य और चन्द्र से शोभायमान हो रहे थे। उन्होंने भगवान के गले में दीर्घ मुक्तामाल पहनायी जोकि लक्ष्मी के हिंडोलों की भाँति लगने लगी। बाल हस्ती के दाँत में जैसे सोने के कंकण पहनाए जाते हैं उसी प्रकार भगवान की दोनो बाहुओं में दो भुजबन्ध पहनाए और वृक्ष शाखाओं के अन्तिम भाग के पल्लवों की तरह गोलाकार और वृहद् मुक्ता के मणिमय कंकण प्रभु के मणिबन्ध में पहनाए। वर्षधर पर्वतों के नितम्ब भाग स्थित सुवर्ण का विलास धारणकारी मेखला भगवान की कमर में पहनायी। दोनों पाँवों में माणिक्य जड़ित नुपुर पहनाए जिन्हें देखकर लगता मानों देवासुरों का तेज इनमें संचारित हो गया है। इन्द्र ने जो-जो आभरण प्रभु अंगों को अलंकृत करने के लिए पहनाए थे वे सभी अलंकरण भगवान के अंगस्पर्श से अलंकृत हो रहे थे। भक्तिपूर्ण, प्रफुल्लित हृदय से इन्द्र ने पारिजात पुष्पमाल्य से प्रभु की पूजा की। फिर मानों कृतार्थ हो गए हों

इस प्रकार कुछ पीछे हटकर भगवान के सम्मुख खड़े हो गए। आरती करने के लिए उन्होंने हाथ में आरती का थाल लिया। प्रज्वलित कान्तिमय आरती दीप से इन्द्र इस भाँति शोभित हुए जैसे प्रकाशमय औषधियुक्त शिखर से महागिरि शोभित होता है। श्रद्धालु देवताओं ने जिस आरती के थाल में पुष्प समूह रखे थे उसी आरती थाल से प्रभु की तीन बार आरती की। फिर भक्ति से रोमांचित होकर शक्रस्तव द्वारा प्रभु की वन्दना कर इन्द्र इस प्रकार स्तुति करने लगे—

'हे जगन्नाथ, हे त्रैलोक्य कमल मार्तण्ड, हे संसार रूपी मरुस्थल के कल्पवृक्ष, हे विश्व उद्धारक बन्धु, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभु, यह मुहूर्त वन्दनीय है जिसने धर्म को जन्म देने वाले, जगत जीवों के दुःखों को नाश करने वाले अपुनर्जन्मा आपको जन्म दिया है। हे नाथ, इस समय आपके जन्माभिषेक जल से अभिसिंचित एवं अनायास ही जिसका मालिन्य दूर हो गया है ऐसी रत्नप्रभा पृथ्वी यथानाम और गुण सम्पन्न हो गयी है। हे प्रभु, वे सबलोग धन्य हैं जो सदैव आपका दर्शन प्राप्त करते हैं। मैं तो कभी-कभी ही आपका दर्शन प्राप्त करूँगा। हे स्वामी, भरत क्षेत्र के मनुष्यों के लिए जो मोक्ष मार्ग बद्ध हो गया था उसे आप नवीन यात्री बनकर पुनः प्रवर्त्तित करेंगे। हे प्रभो, आपके धर्मोपदेश का तो कहना ही क्या? आपका दर्शनमात्र ही जगज्जन का कल्याण करता है। हे भवतारक, ऐसा कोई नहीं है जिससे आपकी तुलना की जाए। तभी तो मैं कहता हूँ आपकी तुलना आप स्वयं ही हैं। और अधिक स्तुति कैसे करूँ? हे नाथ, मैं तो आपके सद्गुणों की वर्णना करने में भी असमर्थ हूँ। कारण स्वयंभूरमण समुद्र के जल को कौन परिमाप कर सकता है?'

इस प्रकार जगत्पति की स्तुति कर प्रमोद से जिसका मन सुवासित हो रहा है उस शक्रेन्द्र ने पूर्व की भाँति ही पाँच रूप धारण किए। उन पाँच रूपों के अप्रमादी एक रूप से उन्होंने ईशानेन्द्र की गोद से रहस्य धारण की भाँति जगत्पति को अपने वक्ष पर धारण किया। स्वामी सेवा का परिचय देने वाले उनके अन्य रूप भी नियुक्त हो गए।

फिर देवताओं के साथ ही देवों के स्वामी इन्द्र वहाँ से आकाश पथ से मरुदेवी के अलंकृत भवन में आए। उन्होंने माता के पास जो प्रतिरूप रखा था उसे उठाकर प्रभु को वहाँ सुला दिया। सूर्य जिस प्रकार कमलिनी की निद्रा दूर करता है उसी प्रकार इन्द्र ने माता मरुदेवी की अवस्वापिनी निद्रा दूर कर

दी। सरिता तटवर्ती हंस पंक्ति का विलास धारणकारी उज्ज्वल, दिव्य और रेशमी वस्त्र का एक जोड़ा उन्होंने भगवान के पास रखा।

बाल्यकाल में भी भावी काल उत्पन्न प्रभामण्डल की द्युति सम्पन्न रत्नमय कुण्डल युगल भी उन्होंने वहीं रख दिए। इस प्रकार स्वर्ण प्राकार निर्मित विचित्र रत्नों का हार और अर्द्धहार में व्याप्त और सुवर्ण सूर्य की भाँति दीप्तिमान श्रीराम दण्ड (झूमर) भगवान के नेत्रों को आनन्द देने के लिए आकाश के सूर्य की भाँति चँदोवे पर लटका दिया। फिर उन्होंने कुबेर को आदेश दिया कि बत्तीस कोटि हिरण्य, बत्तीस कोटि सुवर्ण, बत्तीस कोटि नन्दासन, बत्तीस कोटि भद्रासन एवं अन्य मूल्यवान वस्त्रादि एवं और ऐसी मूल्यवान वस्तुएँ जिससे सांसारिक सुख मिले स्वामी के घर में इस प्रकार वर्षण करो जैसे मेघ पानी बरसाता है।

आज्ञा मिलते ही कुबेर ने जृंभक नामक देवतायों को आदेश दिया। उन्होंने भी इन्द्र की आज्ञानुसार समस्त वस्तुएं वर्षण कीं। कारण प्रचण्ड शक्तिमान पुरुष की आज्ञा कहने के साथ-साथ ही पूर्ण होती है। फिर इन्द्र ने आभियोगिक देवताओं को आदेश दिया—तुम चारों निकाय के देवताओं को सूचित करो कि जो कोई भी प्रभु या उनकी माता का अनिष्ट करने की इच्छा करेगा उसके मस्तक को अर्क मंजरी की भाँति सात टुकड़ों में विभक्त कर दिया जाएगा। गुरु की आज्ञा शिष्य को जिस प्रकार उच्चस्वर में सुनायी जाती है उसी प्रकार उन्होंने भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवताओं को इन्द्र की आज्ञा सुनायी। फिर सूर्य जैसे मेघ को जल से भर देता है उसी प्रकार उन्होंने भगवान के अंगूष्ठ को अमृत से भर दिया। अर्हत् स्तनपान नहीं करते इस लिए जब उनको भूख लगती तब वे अमृतवर्षी अपना अंगूठा मुँह में लेकर चूस लेते। तदुपरान्त पाँच अप्सराओं को धात्रियों का कार्य करने के लिए वहाँ रहने का आदेश दिया।

जिन स्नात्र होने के पश्चात् जब इन्द्र उन्हें माता के पास लेकर चले अन्य देवगण मेरुशिखर से नन्दीश्वर द्वीप चले गए। सौधर्मेन्द्र ने भी नाभि पुत्र को उनके प्रासाद में रखकर स्वर्गवासियों के निवास तुल्य नन्दीश्वर द्वीप में पहुँचे और पूर्व दिग् के क्षुद्र मेरु पर्वत तुल्य उच्चता सम्पन्न देवरमण नामक अंजन गिरि पर अवतरण किया। वहाँ वे विचित्र मणिमय पीठिका शोभित चैत्यवृक्ष और इन्द्रध्वज अंकित चतुर्द्वारी चैत्य भवन में प्रवेश हुए और अष्टाह्निका महोत्सव सहित ऋषभादि अर्हतों की शाश्वती प्रतिमाओं की पूजा की।

उस अंजन गिरि के चारों कोनों पर सरोवर थे। उनमें से प्रत्येक में स्फटिक मणि के दधिमुख नामक चार पर्वत थे। उन चार पर्वतों के ऊपरी चैत्य में शाश्वत अर्हतों की प्रतिमा थी। शक्रेन्द्र के चार दिक्पालों ने अष्टाह्निका महोत्सव सहित उन प्रतिमाओं का विधिवत् पूजन किया।

ईशानेन्द्र ने उत्तर दिशा के नित्य रमणीक ऐसे रमणीय नामक अंजन गिरि पर अवतरण किया। और इसी पर्वत स्थित चैत्य में उपर्युक्त विधि से अष्टाह्निका उत्सव सहित पूजा की। उनके दिक्पालों ने भी उस पर्वत के चारों ओर सरोवर के दधिमुख पर्वत के चैत्य में विराजित शाश्वत् प्रतिमाओं की पूजा की।

चमरेन्द्र ने दक्षिण दिशा के नित्योद्योत नामक अंजनाद्रि पर्वत पर अवतरण किया। रत्न द्वारा नित्य प्रकाशमान उस पर्वत के चैत्य पर विराजित शाश्वती प्रतिमा का उन्होंने अत्यन्त भक्ति पूर्वक पूजन किया। उस पर्वत के चारों ओर स्थित सरोवर के दधिमुख पर्वत पर के चैत्य में विराजित प्रतिमा की अचल चित्त से उत्सव सहित चमरेन्द्र के चारों लोकपालों ने पूजा की।

वलि नामक इन्द्र ने पश्चिम दिशा के स्वयंप्रभ नामक अंजन पर्वत पर मेघ की भाँति प्रभाव सहित अवतरण किया। उन्होंने उस पर्वत के चैत्य पर अवस्थित देवताओं के नेत्रों को पवित्र करने वाली शाश्वती ऋषभादि अर्हत् प्रतिमाओं का उत्सव किया। उनके चारों लोकपालों ने भी उस पर्वत के चारों ओर रहे हुए सरोवर के मध्य दधिमुख नामक पर्वत स्थित चैत्य में विराजित शाश्वती जिन प्रतिमाओं का उत्सव किया।

इस प्रकार समस्त देवता नन्दीश्वर द्वीप में उत्सवादि कर यात्री की भाँति जिस प्रकार आए थे उसी प्रकार अपने-अपने स्थान को प्रत्यावर्त्तन कर गए।

इधर सवेरा होते ही माँ मरुदेवी जागृत हुईं। उन्होंने रात्रि में देवताओं का गमनागमन इस प्रकार वर्णन किया जैसे स्वप्न देखा हो। जगत्पति की जंघा पर वृषभ का चिह्न था और माता मरुदेवी ने भी स्वप्न में सर्वप्रथम वृषभ देखा था। इसलिए हर्षित माता-पिता ने शुभ दिन देख कर उत्साह और उद्दीपना के साथ प्रभु का नाम रखा ऋषभ। उनके साथ यमज रूप में उत्पन्न कन्या का नाम सुमंगला रखा। यह नाम यथार्थ और पवित्र था। जिस प्रकार वृक्ष क्षेत्रान्तरवर्ती नाले का जलपान करता है उसी प्रकार ऋषभ स्वामी भी इन्द्र द्वारा अंगुष्ठ में प्रदत्त अमृत योग्य समय प्राप्त होने पर पान करने लगे। पर्वत कन्दरे में जिस प्रकार सिंह शावक शोभा पाता है उसी प्रकार पिता की

क्रोड़ में बालक ऋषभ शोभा पाने लगे। पाँच समिति जिस प्रकार महामुनि का त्याग नहीं करती उसी प्रकार इन्द्र द्वारा नियुक्त पाँचों धात्रियाँ एक मुहूर्त्त के लिए भी प्रभु का परित्याग नहीं करती थीं।

जब भगवान एक वर्ष के हो गए तब सौधर्मेन्द्र वंश की स्थापना के लिए वहाँ आए। सेवक को प्रभु के निकट कभी खाली हाथ नहीं जाना चाहिए अतः इन्द्र एक वृहद् इक्षु हाथ में लेकर आए। मूर्त्तिमान शरद् ऋतु की भाँति इन्द्र इक्षु सहित वहाँ आए जहाँ प्रभु नाभिराज की गोद में बैठे थे। अवधि ज्ञान से इन्द्र के मनोभावों को जानकर हस्ती सूँड़ की भाँति उन्होंने अपना हाथ प्रसारित किया। स्वामी के मनोभाव को समझ कर इन्द्र ने भी मस्तक झुकाकर वह इक्षु प्रभु को उपहार रूप में प्रदान किया। भगवान ने इक्षु ग्रहण किया था इसलिए इन्द्र ने आपके वंश का नाम इक्ष्वाकु रखकर स्वर्ग की ओर गमन किया।

युगादिनाथ का शरीर स्वेद, रोग, मल रहित एवं सुगन्धयुक्त और सुन्दराकृति वाला, स्वर्णकमल की भाँति शोभित था। उनके शरीर का मांस और रक्त गोदुग्ध की भाँति उज्ज्वल और दुर्गन्ध रहित था। उनका आहार एवं शौचक्रियादि चर्म चक्षु से अगोचर थे अर्थात् उनका आहार शौचकर्म कोई नहीं देख सकता था। उनके निःश्वाँस की सुगन्ध विकसित कमल की सी थी। ये चार अतिशय प्रभु को जन्म से ही प्राप्त थे। वज्र ऋषभनाराच संहनन विशिष्ट प्रभु यह सोचकर धीरे-धीरे चलते कहीं पीछे को धरती धंस नहीं जाए। यद्यपि उनकी उम्र छोटी थी फिर भी वे गम्भीर और मधुर स्वर में बोलते थे। कारण लोकोत्तर प्रभु का बाल्यकाल तो केवल उम्र की दृष्टि से ही होता है। समचतुरस्रसंस्थान सम्पन्न प्रभु का शरीर इस प्रकार शोभित होता मानों वह क्रीड़ा विलासिनी कमला की स्वर्णमय क्रीड़ा वेदिका हो।

उनके समान वयस धारण कर आए हुए देवकुमारों के साथ वे उन्हें परितुष्ट करने के लिए खेलते। खेल के समय प्रभु की धूलिलिप्त देह नुपूर पहने हुए पैरों से गर्वित हस्ति शावक सी लगती। लीलामात्र में प्रभु जो कुछ पा सकते थे अनेक ऋद्धि सम्पन्न देव भी उसे पाने में समर्थ नहीं थे। यदि कोई प्रभु की बल परीक्षा के लिए उनकी अंगुली पकड़ता तो उनकी श्वाँस-वायु से धूलिकण की भाँति उड़कर दूर जा गिरता।

[क्रमशः

डा० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ—'जैन प्रतिमाएँ'

अगर चन्द नाहटा

जैन धर्म को भारत का प्राचीनतम धर्म कहा जाता है। क्योंकि जैन परम्परा के अनुसार भगवान ऋषभदेव ने ही युगलिक परम्परा या धर्म का निवारण करके एक विशिष्ट मानवीय सभ्यता और संस्कृति का क्रान्तिकारी आविर्भाव किया। कृषि, मसि और असि तीनों का आविष्कार करके भोग भूमि को कर्म-भूमि के रूप में परिणत कर दिया। वे राजा पदधारी पहले शासक बने। इससे पहले कुलकर लोग नीति संचालन करते थे अर्थात् वे मुखिया की तरह थे। जंबूद्दीप पण्णत्ति नामक उपांग में भग० ऋषभदेव के पाँचों कल्याणक और भरत का व्यवस्थित चरित्र सर्वप्रथम मिलता है। उसमें भगवान ऋषभदेव के पाँचों कल्याणकों की तरह राज्याभिषेक का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। भग० ऋषभदेव ने ही अपने पुत्र और पुत्रियों को लिपि और अंक विद्या के साथ पुरुषों की ७२ एवं स्त्रियों की ६४ कलाएँ सिखायी। अतः कला के सर्वप्रथम शिक्षक भग० ऋषभदेव ही सिद्ध होते हैं।

उस समय की मूर्ति कला का स्वरूप कैसा था यह तो नहीं कहा जा सकता। कारण उस समय का कुछ भी अवशेष नहीं है पर भगवान ऋषभदेव के निर्वाण स्थान पर स्तूप या स्तम्भ बनाने का उल्लेख भी जंबूद्दीप पण्णत्ति सुत्त में प्राप्त है। पीछे के ग्रन्थों के अनुसार भगवान ऋषभदेव के निर्वाण स्थान कैलाश या अष्टापद पर्वत पर भरत चक्रवर्ती ने जैन मन्दिर बनाया था और उसमें तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ स्थापित की थी। पर वह तो प्रागैतिहासिक काल की बात है। पर ऐतिहासिक काल में भगवान महावीर की विद्यमानता में उनकी एक चन्दन-मूर्त्ति की वीतभय पत्तन की रानी प्रभावती पूजा करती थी ऐसा आवश्यक चूर्णि में उल्लेख है और आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार १२वीं शताब्दी में भी महाराजा कुमारपाल ने वह मूर्त्ति प्रकट की थी। अतः भगवान महावीर के समय में जैन मूर्त्ति पूजित थी ऐसा कहा जा सकता है। वीतभय पत्तन की उस चन्दन की महावीर प्रतिमा को उज्जैन का राजा चण्ड प्रद्योत ले गया तो राजा उदयन ने उस पर चढ़ाई करके उस मूर्त्ति को पुनः अपने यहाँ लाने के लिए युद्ध किया था। उदयन ने विजय प्राप्त कर अपने नगर को वापस आते समय उस मूर्त्ति को मार्ग में

ले लिया, पर वीतभय पत्तन का भावी विनाश होने के संकेत से वह मूर्त्ति विदिशा में स्थापित करनी पड़ी, ऐसा भी उल्लेख मिला है।

उड़ीसा के महाराजा खारवेल के शिलालेख से ऐसी ही एक घटना की पुनरावृत्ति का पता चलता है। शिलालेख में यह संकेत है कि कलिंग की अग्र जैन मूर्त्ति को नन्द राजा ले गये थे। खारवेल ने मगध पर चढ़ाई करके और विजय प्राप्त करके उस मूर्त्ति को वापस अपने यहाँ स्थापित की। इसके बाद मौर्यकाल की खण्डित जैन प्रतिमा तो पटना म्युजियम में प्राप्त है ही, और कुषाण काल की तो अनेकों प्रतिमाएँ मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त हुई हैं जो मथुरा और लखनऊ म्युजियम में सुरक्षित है। कंकाली टीले से एक देव निर्मित स्तूप भी मिला है। जिसमें श्वे० जैन परम्परा के अनुसार सुपार्श्वनाथ या पार्श्वनाथ की मूर्त्ति थी। अतः जैन स्तूप और प्रतिमा की परम्परा बहुत प्राचीन सिद्ध होती है। इन जैन अनुश्रुतियों और पुरातत्व से संगति बैठाकर अभी तक कोई ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

हर्ष की बात है कि राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, के कीपर डा० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा ने जैन मूर्त्तियों सम्बन्धी शोधपूर्ण बहुत से लेख लिखे हैं जो कई पत्रिकाओं व स्मारिकाओं आदि में प्रकाशित होते रहे हैं। अभी-अभी उनका एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'जैन प्रतिमाएँ' के नाम से इण्डोलोजिकल बुक कारपोरेशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। यह ग्रन्थ बारह अध्यायों में विभक्त है। यथा—

(१) जैन प्रतिमाओं के विकास में नरहड़ की जैन मूर्त्तियाँ
(२) सरस्वती प्रतिमाओं के विकास में पल्लु की सरस्वती प्रतिमाएँ
(३) गन्धावल और जैन मूर्त्तियाँ
(४) राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में जैन प्रस्तर प्रतिमाएँ
(५) राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में जैन कांस्य प्रतिमाएँ
(६) प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में जैन प्रस्तर प्रतिमाएँ
(७) प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में जैन कांस्य प्रतिमाएँ
(८) राजस्थान के संग्रहालयों में जैन प्रतिमाएँ
(९) भारतीय संग्रहालयों में जैन प्रतिमाएँ
(१०) यूरोप के संग्रहालय में जैन प्रतिमाएँ
(११) अमरीकी संग्रहालयों एवं निजी संग्रहों में जैन प्रतिमाएँ
(१२) जैन प्रतिमा विज्ञान

विदेशों के संग्रहालयों की जैन प्रतिमाओं पर तो डा० शर्मा ने ही सबसे पहले प्रकाश डाला है। ग्रन्थ बहुत सुन्दर रूप से निकला है। कागज, छपाई व जिल्द अच्छी है ही। प्राचीन एवं मध्यकालीन ५० से अधिक चित्र भी दिए गए हैं। ग्रन्थ का मूल्य प्रकाशक ने ६०) रु० रखा है। ऊपर के कवर पर मुद्रित एक प्राचीन जैन त्रितीर्थि धातु प्रतिमा का चित्र बहुत ही कलापूर्ण और आकर्षक है।

डा० उमाकान्त शाह लिखित जैन प्रतिमाओं सम्बन्धी शोध प्रबन्ध भी शीघ्र ही प्रकाश में लाना आवश्यक है। जैन मूर्त्ति कला पर सबसे अधिक और उत्तम कार्य उन्होंने ही किया है। जैन कला सम्बन्धी कई ग्रन्थ और बहुत से लेख उनके प्रकाशित हो चुके हैं। भारतीय कला मर्मज्ञों में उनका विशिष्ट स्थान है। खेद है बहुत वर्षों पहले उन्होंने जैन मूर्त्ति कला पर जो शोध प्रबन्ध लिखा वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।

इन वर्षों में जैन मूर्त्ति कला आदि पर कई अन्य जैनेतर विद्वानों ने भी अच्छा काम किया है। उनको अपने कार्य में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है और उनका भी शोध प्रबन्ध अभी तक अप्रकाशित है। पार्श्वनाथ विद्याश्रम के डा० हरिहर सिंह को डाक्ट्रेट मिल चुका है। बनारस के ही मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी ने भी अच्छा काम किया है और डा० शिवकुमार नामदेव डिण्डोरी वालों के भी कई महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि अभी तक जैन मूर्त्ति कला पर जैनेतर लेखकों ने तो काफी लिखा है व शोध कार्य किया है पर जैन समाज में से किसी ने भी इसमें विशेष रुचि नहीं ली। केवल साराभाई नवाब के कुछ ग्रन्थ जैन चित्रकला आदि पर प्रकाशित हुए हैं। आवश्यकता है जैसे श्री बालचन्द जैन ने 'जैन प्रतिमा विज्ञान' ग्रन्थ लिखा है वैसे ही जैन मूर्त्तिकला पर भी कोई जैन विद्वान—खूब अध्ययनपूर्ण प्रकाश डाले।

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

कुशल निर्देश ॥ जून १९८२

इस अंक में है 'श्री सहजानन्द घन जी महाराज का श्री आनन्दघन विजय जी को दिया पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'चम्पक सेठ' (गु० पं० धीरजलाल टो० शाह, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'भगवान महावीर की परम भक्त श्राविका सुलसा की दृढ़ श्रद्धा' (अगरचन्द नाहटा), 'सुपात्र दान का फल' (भँवरलाल नाहटा), 'आत्मानुभव' (डा० पुष्पा जैन), 'श्री जिनवल्लभ सूरि कृत लघु अजित शांति स्तोत्र पद्यानुवाद' (भँवरलाल नाहटा)।

जिनवाणी ॥ जून १९८२

आचार्य श्री हस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'स्वाध्याय हमारे जीवन का अंग बने' (रणजीत सिंह कूमठ), 'स्वाध्याय एक समग्र प्रक्रिया' (डा० इन्दरराज बैद), 'स्वाध्याय एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया' (डा० उदय जैन), 'आज की शिक्षा में अध्ययन और स्वाध्याय का समन्वय कैसे किया जाए' (सौभाग्यमल श्री श्रीमाल), 'स्वाध्याय : स्वरूप और क्षेत्र' (उत्तम चन्द कोठारी)।

तीर्थंकर ॥ मई-जून १९८२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'भय कितना कायर, कितना कमजोर' (अभिलाष कुमार), 'गोमटेश वन्दना' (मू : आ० नेमिचन्द्र जैन, अनु० राजेन्द्र कुलश्रेष्ठ), 'वक्त आ गया है' (डा० कुन्तल गोयल), 'पंच महाव्रत और यौगिक यम' (गोपाल शर्मा), 'अहिंसा अखण्ड की स्वीकृति' (मुनि सुखलाल), 'महावीर का अनेकान्त दृष्टि' (डा० निजामुद्दीन)।

तुलसी प्रज्ञा ॥ फरवरी-मार्च १९८२

जैन योग विशेषांक

आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन साधना पद्धति एवं ध्यान' (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), 'आगम साहित्य में योग के बीज' (मुनि श्री राकेश कुमार), 'उपासक प्रतिमा' (साध्वी श्री सिद्धप्रज्ञा), 'अनुप्रेक्षा काव्यों में' (साध्वी श्री निर्वाण श्री), 'उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में योग' (साध्वी श्री जतन कुमारी), 'भारतीय योग साधना में ध्यान' (राजीव

प्रचण्डिया), 'आयारो हिन्दी पद्यानुवाद' (मुनि श्री माँगीलाल), 'Principles of Preksa Dhyana' (Yuvacarya Mahaprajna), 'Preksa Meditation Key to Mental Problem' (Muni Sri Mahendra Kumar & J. S. Zaveri), 'Early Evidence for Jaina Meditation in the Buddhist Canon' (Johannes Bronkhorst), 'Meditation and Mental Tension' (Dr. N. M. Tatia), 'Some Aspects of Jaina Yoga in the Tenth Century' (Dr. B. K. Khadabadi), 'The Preksa Meditation—An Evaluation' (Dr. N. M. Tatia), 'Jaina Technical Terms' (Dr. Mohanlal Mehta) ।

श्रमण ॥ जून १९८२

इस अंक में है 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र में जैनाचार्यों का योगदान '(राम यादव)

युवा दृष्टि ॥ जून १९८२

इस अंक में है 'मानसिक सन्तुलन' (युवाचार्य महाप्रज्ञ), 'दक्षिण भारत में जैन धर्म' (मुनि श्री सुमेरमल) ।

जैन भवन प्रकाशन

हिन्दी

१. अतिमुक्त (२य संस्करण)— श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी ८.००

२. भ्रमण संस्कृति की कविता—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी ३.००

३. चिदानन्द ग्रन्थावली—श्री केशरीचन्द धूपिया ५.००

४. भगवान महावीर (एलबम्) १०.००

बांग्ला

१. सातटी जैन तीर्थ —श्रीगणेश लालओयानी ७.००
२. अतिमुक्त —श्रीगणेश लालओयानी ४.००
३. श्रमण संस्कृतिर कविता —श्रीगणेश लालओयानी ७.००
४. भगवान महावीर ओ जैन धर्म —श्रीपूरणचाँद श्यामसुखा २.००

English

1. Bhagavati Sutra (Text with English Translation)
—Sri K. C. Lalwani

Vol. II (Satak 3-6) 40.00
Vol. III (Satak 7-8) 50.00

2. The Temples of Satrunjaya
—James Burgess 50.00

3. Essence of Jainism—Sri P. C. Samsukha
tr. by Sri Ganesh Lalwani 1.50

4. Thus Sayeth Our Lord—Sri Ganesh Lalwani 1.50

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७०००० ७

Vol. VI No. 3 : Titthayara : July 1982
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001